THE ECONOMIC TIMES

Date: 05-08-24

Mining, For States to Tax and Take Care

ET Editorials

In an important judgment crucial to India's mineral-rich states like Jharkhand, West Bengal, Odisha, UP, Madhya Pradesh, Karnataka and Goa, last week, the Supreme Court affirmed that state governments have the authority to levy taxes on mineral rights, despite the regulatory framework established by the Mines and Minerals (Development and Regulation) Act 1957. The court found royalty not to be tax, thereby limiting the scope of Parliament's control over state taxation of mineral rights. This verdict is welcome.

It means enhanced revenue for states, many of which are resource-rich but poor. It underscores states' autonomy in a federal structure and, importantly, clarifies the scope of MMDR Act, distinguishing between regulation of minerals (a central domain) and taxation of minerals (a state domain). This has been long-pending and will, hopefully, avoid future conflicts over jurisdiction. Importantly, CJI D Y Chandrachud pointed out that states have limited room for taxation, with most rights residing with the Centre. While it could be a windfall for states, they will now also have the responsibility of spending on development and bear liabilities. Mining companies have warned that the extra costs could be passed on to customers, so states will have to tax sustainably.

All is not done yet. On the day the top court gave its ruling, the Centre, along with a batch of mining companies, argued that the judgment should be applied prospectively to prevent confusion, legal challenges and associated administrative burdens. The apex court has reserved its decision. A middle ground would be to go for the prospective application of the ruling to limit the impact on mining companies and ensure that the new regime can begin on a fresh note.

दैनिक जागरण

Date: 05-08-24

लैंगिक समानता की दिशा में सही कदम

ऋतु सारस्वत, (लेखिका समाजशास्त्री हैं)

नारी सशक्तीकरण को लेकर प्रतिबद्धता व्यक्त करते हुए सरकार ने हालिया बजट में लड़कियों एवं महिलाओं को लाभ पहुंचाने वाली योजनाओं के लिए तीन लाख करोड़ रुपये आवंटित किए। इस राशि का उपयोग महिलाओं के कौशल विकास कार्यक्रम, स्वयं-सहायता समूहों के लिए बाजार तक पहुंच को सक्षम बनाने और उन्हें विनिर्माण क्षेत्र में रोजगार देने में होगा।

इन कदमों से कामकाजी आबादी में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने में मदद मिलेगी। आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार शिक्षा और कौशल विकास तक बढ़ती पहुंच के चलते महिला श्रमशक्ति भागीदारी दर 2017-18 में 23.3 प्रतिशत से बढ़कर 2022-23 में 37 प्रतिशत हो गई। वित्त वर्ष 2024-25 में 'लैंगिक बजट' पर सरकार का खर्च अब तक व्यय की जाने वाली राशि में सर्वाधिक होगा। अब यह सरकार के कुल व्यय का 6.5 प्रतिशत हो चुका है। पिछले दो दशकों का यह औसत 4.8 रहा है।

भारत में लैंगिक बजट वित्त वर्ष 2005-06 में यह सुनिश्चित करने के लिए शुरू किया गया कि विकास के लाभ से आधी आबादी वंचित न रहने पाए। अन्य अनेक देशों ने भी कार्यबल में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के लिए लैंगिक दृष्टि से संवेदनशील बजट बनाने शुरू किए हैं। वैश्विक स्तर पर ऐसे बजट बनाने की शुरुआत 1984 में आस्ट्रेलिया ने की, जिसका अनुसरण कई देशों ने किया।

किसी भी देश के लिए लैंगिक समानता के सभी आयामों तक पहुंच बनाने के लिए जितना अधिक महत्वपूर्ण लैंगिक दृष्टि से संवेदनशील बजट बनाना होता है, उतना ही आवश्यक लैंगिक समानता पर दृष्टि रखने के लिए व्यापक प्रणालियों को विकसित करना भी। सक्षम प्रणालियों के बिना देश लैंगिक समानता कानूनों और नीतियों को लागू करने के लिए संसाधनों का आवंटन और व्यय नहीं कर सकते।

2013 में मोरक्को के वित्त मंत्रालय ने लैंगिक दृष्टि से संवेदनशील बजट के लिए उत्कृष्टता केंद्र की शुरुआत की, जो सांसदों को जानकारी प्रदान करता है कि स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर पर सार्वजनिक नीतियां लैंगिक समानता की दिशा में कैसे काम कर रही हैं? आस्ट्रिया वैश्विक स्तर पर उन देशों में अग्रणी है, जिसने संविधान में लैंगिक समानता को शामिल किया।

अपने देश में 2005-06 में लैंगिक बजट की शुरुआत के बाद मार्च 2007 में वित्त मंत्रालय के व्यय विभाग ने 'जेंडर बजट सेल' स्थापित किया। इसी क्रम में 2013 में लैंगिक रूप से संवेदनशील बजट को संस्थागत करने की दिशा में एक विस्तृत निर्देशिका जारी की गई।

लैंगिक समानता की बाधाओं से निपटने के लिए सरकार द्वारा विभिन्न घटकों पर काम किया जा रहा है। चूंकि लैंगिक समानता के सभी घटक अंतर्संबंधित हैं इसलिए किसी एक की अवहेलना दूसरे क्षेत्र को प्रभावित करने की क्षमता रखती है। इसी कारण सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक सशक्तीकरण के विभिन्न आयामों पर समान रूप से ध्यान दिया गया है।

दुनिया भर में हुए शोध यह स्पष्ट करते हैं कि वित्तीय स्वतंत्रता नारी सशक्तीकरण की अपरिहार्य शर्त है। वित्तीय स्वतंत्रता के मार्ग में सबसे बड़ा व्यवधान 'प्रणालीगत पूर्वाग्रह और धारणा संबंधी' चुनौतियां हैं, जो अक्सर वित्तपोषण करने की क्षमता सीमित कर देती हैं। समाज में परंपरागत भूमिकाएं भी महिलाओं की आत्मनिर्भरता के मार्ग को दुष्कर कर देती हैं। वित्तीय स्वावलंबन के दो आयाम हैं।

पहला, किसी रोजगार में संलग्न होना और दूसरा, स्वरोजगार। इन दोनों ही क्षेत्रों की अपनी-अपनी मुश्किलें हैं। शहरी क्षेत्र में रोजगार में संलग्न महिलाओं के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा सुरक्षित और किफायती आवास है। इससे भी अधिक चुनौतीपूर्ण स्थिति कामकाजी माताओं की है। 'वुमेन इन इंडिया इंक एचआर मैनेजर्स सर्वे' के अनुसार 34 प्रतिशत महिलाएं कार्यजीवन में असंतुलन के कारण नौकरी छोड़ देती हैं।

केंद्रीय बजट में वित्त मंत्री ने कामकाजी महिलाओं के लिए छात्रावास स्थापित करने का प्रविधान करके कार्यबल में महिलाओं की अहम भूमिका को मान्यता दी है। इन छात्रावासों का उद्देश्य महिलाओं को सुरक्षित एवं अनुकूल परिवेश प्रदान करना है, जिससे वे सुविधा और सुरक्षा से समझौता किए बगैर कार्य कर सकें। इसके साथ ही कामकाजी माताओं के लिए पेशेवर और व्यक्तिगत उत्तरदायित्व के बीच संतुलन बनाने के लिए क्रेच की घोषणा यह स्पष्ट करती है कि सरकार का लक्ष्य महिलाओं को कार्यबल में शामिल करने का है, जिससे वे सशक्त बन सकें।

इस बार बजट में उन महिलाओं की ओर भी विशेष ध्यान दिया गया है, जो उद्यम स्थापित करना चाहती हैं। एमएसएमई क्षेत्र में सबसे ज्यादा महिलाएं हैं, जो बिना किसी गारंटी के ऋण पाने के लिए संघर्ष करती हैं। इन महिलाओं के लिए मुद्रा ऋण की ऊपरी सीमा को दोगुना करके 20 लाख किया जाना उत्साहवर्धक है। आर्थिक सशक्तीकरण महिलाओं की बाजारों और संसाधनों तक पहुंच सुनिश्चित करता है और उनकी क्रयशक्ति बढ़ाता है।

आत्मनिर्भर महिलाएं घर एवं बाहर, दोनों ही जगह निर्णय लेने की क्षमता रखती हैं। वित्तीय स्वतंत्रता घरेलू हिंसा से मुक्ति का मार्ग भी है। बजट 2024-25 की घोषणाएं लैंगिक समानता और नारी सशक्तीकरण के प्रति सरकार की संवेदनशीलता को तो स्पष्ट कर रही हैं, पर उनकी असल चुनौती क्रियान्वयन के मोर्चे पर है।

महिलाओं को कौशल प्रदान करने या उनके स्वयं सहायता समूहों को सशक्त बनाने की ज्यादातर पहल नेक इरादों से शुरू होकर बाद में अपनी गति को प्राप्त हो जाती है, इसलिए धन आवंटित करना ही पर्याप्त नहीं। इसके साथ एक ऐसे तंत्र को भी स्थापित करने की आवश्यकता है, जो यह सुनिश्चित करे कि लाभार्थियों को बिना किसी बाधा के बजट में प्रस्तावित वित्तीय सुविधाएं प्राप्त हों।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 05-08-24

मुकदमेबाजी में समझौता

संपादकीय

भारत के प्रधानमंत्री जस्टिस डीवाई चंद्रचूड़ ने दोटूक कहा है कि लोग अदालतों से 'इतने तंग आ गए हैं कि वे बस समझौता चाहते हैं। वे कहते हैं कि वस, अदालत से दूर करा दीजिए। जस्टिस चंद्रचूड़ विशेष लोक अदालत सप्ताह के दौरान शनिवार को एक कार्यक्रम को संबोधित कर रहे थे। वैकल्पिक विवाद निवारण तंत्र के रूप में लोक अदालतों की भूमिका पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा कि लोगों में इस प्रकार की भावना उपरना बतौर जज हम लोगों के लिए गहन चिंता का विषय है। बेशक, लोगों का अदालती मामलों से त्रस्त होकर छुटकारा पाने उत्कट इच्छा न्याय व्यवस्था के लिए कोई अच्छी बात नहीं है। इससे संदेश यह निकलता है कि व्यवस्था लोगों की अपेक्षाओं पर खरी नहीं उतर पा रही है। और इसलिए उन्हें मजबूरी में मामलों में समझौता करने की राह चुनना बेहतर लगता है। समझौता कोई न्याय नहीं है, बल्कि मजबूरी में किया गया उपाय है, जो समाज में पहले से मौजूद असमानताओं को ही दर्शाता है। जैसा कि प्रधान न्यायाधीश ने भी हंगित किया है कि यह स्थिति अपने आप में सजा है। लोक अदालत की अवधारणा इस स्थिति से निजात दिलाती हैं जहां आपसी समझते और सहमति से मामलों को सुलटाया जाता है और कोई भी अपने आप को मजबूर या न्याय से वंचित हुआ नहीं पाता। लोक अदालत से मामले का निस्तारण होने पर फैसले के खिलाफ अपील नहीं की जा सकती। सबसे अच्छी बात यह है कि फैसला परस्पर सहमति के आधार पर किया जाता है। कहना न होगा कि तमाम मामले ऐसे होते हैं, जिन्हें आपसी सहमति से सुलझाया सकता है। सबसे बड़ा तो यह कि लोक अदालत के माध्यम से न्याय दिया जाना अदालतों पर मुकदमों के भार को कम करने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण उपक्रम है। यहां फैसला किसी भी रूप में थोपा हुआ करार नहीं दिया जा सकता। इसलिए जरूरी है कि लोक अदालत की अवधारणा को संस्था के रूप मजबूत किया जाए। न्याय की पहुंच आम नागरिकों तक सुनिश्चित करने की बात हमारे संविधान में निहित है, लेकिन नौबत यह है कि आम जन न्याय पाने की बजाय हलकान ज्यादा हो जाता है। यह स्थिति लोकतांत्रिक समाज में स्वीकार्य नहीं हो सकती। जिस समाज में आम जन को न्याय पाने में हलकान होना पड़ जाए उसे किसी भी सूरत में अभीष्ट या आदर्श समाज नहीं कहा जा सकता। लोक अदालत सार्थक है क्योंकि इनका उद्देश्य ही लोगों के घरों तक न्याय पहुंचाना है।